वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ कृष्ण ११, बुधवार
दिनांक-२३-०६-१९७६, गाथा-२७ - २८, प्रवचन-१६

परमात्मप्रकाश, २७वीं गाथा। फिर से थोड़ा लेते हैं। शब्दार्थ है न, शब्दार्थ? '**येन दृष्टेन लघु पूर्वकृतानि कर्माणि त्रुटयन्ति**' जिसे देखने से—भगवान परमात्मस्वरूप स्वयं है, उसे देखने से '**लघु शीघ्र ही पूर्वकृतानि**' इसका अर्थ जरा किया है। '**परमात्मनः प्रतिबन्धकानि**' अर्थात् निमित्त है न? **निर्वाण के रोकनेवाले पूर्व उपार्जित कर्म चूर्ण हो जाते हैं,...** '**येन दृष्टेन**' जो वस्तु भगवान परमात्मस्वरूप देह से भिन्न विराजती है, जिसे देखने से पूर्व के अज्ञानभाव से बँधे हुए कर्म टूटते हैं। समझ में आया? '**येन दृष्टेन**' ऐसा है न? '**जेँ दिट्ठेँ**' संस्कृत में '**येन दृष्टेन**' जिसे देखने से—भगवान परमात्मस्वरूप को देखने से अर्थात् निर्विकल्प शान्त परिणति द्वारा उसे देखने से। आहाहा! ऐसी बात है। है न?

सदा आनन्दरूप वीतराग निर्विकल्प समाधिस्वरूप निर्मल नेत्रोंकर देखने से... आहाहा! सदा आनन्दरूप वीतराग। यह वर्तमान परिणति की बात है, हों! वस्तु है, वह परमात्मस्वरूप है। उसे देखनेवाली परिणति—अवस्था सदा आनन्दरूप वीतराग है। ऐसी निर्विकल्प समाधि। राग बिना की दशा अर्थात् कि शान्ति समाधि, ऐसे स्वरूप निर्मल नेत्र। आहाहा! पूर्ण परमात्मस्वभाव को निर्मल नेत्र द्वारा। निर्मल नेत्र अर्थात्? स्वसन्मुख की निर्विकल्प शान्तिरूपी सम्यक् नेत्र से देखने से। आहाहा!

'**पूर्वकृतानि लघु कर्माणि त्रुटयन्ति**' आहाहा! पूर्व में जो अज्ञानभाव से उपार्जित कर्म हैं, वे शीघ्र चूर्ण हो जाते हैं। आहाहा! '**पूर्वकृतानि**' का अर्थ ऐसा किया है। '**पूर्वकृतानि**' का अर्थ रोकनेवाले। निमित्त से कथन है? '**प्रतिबन्धकानि**' है न? '**परमात्मनः प्रतिबन्धकानि**' आहाहा!

इससे तो बात छंछेड़ी है। प्रतिबन्ध। यह शब्द है इसमें। परन्तु इसका क्या अर्थ? स्वयं जो उल्टी परिणति की है, वह उसे प्रतिबन्ध है। कर्म तो निमित्तरूप है। उल्टी परिणति जो स्वभाव के भान बिना विपरीत परिणति जो की है, वह रुकावट है। उसे अन्तर निर्मल परिणति द्वारा शुद्ध परमात्मा को देखने से वह अशुद्ध परिणति छूट जाती

है। बात ऐसी है। कर्म तो जड़ है। जड़ को छूटना या टूटना, वह कहीं आत्मा के अधिकार की बात नहीं है।

मुमुक्षु : निमित्त को मानते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा, नहीं? निमित्त तो होता है। आहाहा! निमित्त किस क्षण में नहीं? और किस क्षण में उपादान का कार्य स्वतन्त्र नहीं होता?

मुमुक्षु : प्रतिबन्धक मानो तो माना कहलाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिबन्ध किसे कहते हैं? यह कल नहीं कहा था? पंचास्तिकाय का, नहीं? १६३ गाथा। स्वयं विषय की मर्यादा में अटकता है, वह प्रतिबद्ध है। है? पंचास्तिकाय। **वास्तव में सौख्य का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव है।** यह प्रतिकूलता और प्रतिबन्ध की व्याख्या, पण्डितजी! वास्तव में सौख्य का कारण— आत्मा के आनन्द का कारण स्वभाव की प्रतिकूलता का अभाव है। 'प्रतिकूलता, विरुद्धता, विपरीतता, उल्टापन।' **आत्मा का स्वभाव वास्तव में दृशि-ज्ञप्ति (दर्शन और ज्ञान) है। उन दोनों को विषय प्रतिबन्ध होना, वह प्रतिकूलता है।** विषय में रूकावट करता है। मर्यादित—रोकता है, वह स्वभाव की प्रतिकूलता है। आहाहा! क्या कहा यह? अपनी पर्याय अल्प विषय में रोकता है, वह रुकावट है। ऐसी बात है, भाई! जिसे देखनेवाले की पर्याय जिसकी है, उसे देखने में रुकता नहीं और पर के विषय में देखने में रुकता है, यही उसकी प्रतिकूलता और प्रतिबन्ध है। भाई!

भगवान आत्मा '**येन दृष्टेन**' कहा है न? आहाहा! शुद्धानन्द परमात्मस्वरूप प्रभु, उसे जो निर्मल शान्ति की, अकषाय की, समाधि की परिणति द्वारा निर्मल नेत्र द्वारा देखना चाहिए, उसे न देखकर बाहर के विषयों को (देखने में) अल्प विषय में पर्याय को रोकता है, वही उसकी रूकावट है। बराबर है? आहाहा! दोनों को विषय प्रतिबन्ध होना, वह प्रतिकूलता है। आहाहा! **मोक्ष में वास्तव में आत्मा सर्व को जानता और देखता होने से उसका अभाव होता है।** अल्पज्ञता में जो अटकता था, उसका मोक्ष में अभाव है। आहाहा! ऐसी बात है।

अर्थात् सम्यग्ज्ञान के अभाव से (अज्ञान से) जो पहले शुभ-अशुभकर्म कमाये

थे, वे निजस्वरूप के देखने से ही नाश हो जाते हैं,... आहाहा! पर स्वरूप में अकेला देखने से अटका हुआ था और उसके कारण कर्म उपार्जित किया था, वह तो परवस्तु है। समझ में आया? अपने स्वरूप को न देखकर, पर की ओर के विषय की अल्पता में ज्ञान को रोककर जो प्रतिबद्ध था, वह **'येन दृष्टेन'** इस भगवान आत्मा को देखने से उस प्रतिबद्ध का नाश हो जाता है। ऐसा है यह। है? **निजस्वरूप के देखने से ही...** आहाहा! ज्ञान को अल्प विषय में—पर में रोका हुआ था, उस ज्ञान की परिणति से पूर्णानन्द के नाथ को देखा, उस ओर दशा ढली, इसलिए प्रतिबद्ध के जो कारण थे, उनका नाश होता है। आहाहा! ऐसी बहुत सूक्ष्म बातें, बापू! यह तो परमात्मा के घर की बात, भाई! इसमें... आहाहा!

कहते हैं, देखो! **उस सदानन्दरूप परमात्मा को देह में बसते हुए भी... 'तं परं'** परमात्मा। परमस्वरूप भगवान पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शान्ति—ऐसा जो परमात्मा, वह परम। आहाहा! ऐसे परम परमात्मा को **सदानन्दरूप परमात्मा को...** आहाहा! पहले लिया था कि सदानन्दरूप वीतराग की समाधि। वह परिणति-पर्याय ली थी। सदा आनन्दरूप वीतराग निर्विकल्प समाधि से देख। अब वह स्वयं कैसा है? सदानन्दरूप परमात्मा स्वयं है। आहाहा! सदानन्दरूप भगवान आत्मा त्रिकाल आनन्दरूप है। उसे आनन्द की परिणति द्वारा, शान्ति द्वारा देख। वहाँ देख। उसे—भगवान को देख। आहाहा! भगवान को देख। ऐसी बात है।

देह में बसते हुए भी हे योगी... आहाहा! सदानन्दस्वरूप भगवान वहाँ अन्दर प्रभु विराजता है न। आहाहा! देह में भिन्न विराजता है। उसमें बसे हुए को तू क्यों नहीं देखता? ऐसी बसी हुई वस्तु को क्यों नहीं देखता? ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है। **उस सदानन्दरूप परमात्मा को... 'देहे वसन्तं'** शरीर के रजकण से साथ में भिन्न प्रभु विराजता है। आहाहा! उसे **हे योगी... 'किं न जानासि'** आहाहा! जाननेवाले को क्यों नहीं जानता? ऐसा कहते हैं। और दूसरी चीज़ ज्ञात हो वहाँ रुक गया है, भाई! आहाहा! जाननेवाला, उसे तू जानता नहीं और जो ज्ञात होनेयोग्य परवस्तु है, वहाँ रुक गया है। आहाहा! और वह भगवान विराजता है। साक्षात् प्रभु है। आहाहा! उसे **तू क्यों नहीं जानता?** आहाहा! क्या गाथा है! यह वस्तुस्थिति ऐसी है, भाई! यह

कहीं वाद-विवाद से पार पड़े, ऐसा नहीं है। वस्तु की मर्यादा है, इस प्रकार से जाने तो खबर पड़े। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ :- तू क्यों नहीं जानता? आहाहा! प्रभु परमात्मा है न, उसके सामने क्यों नहीं देखता? आहाहा! बड़ा पुरुष मिलने आया हो और उसके सामने न देखकर बालक से बात करने में रुक जाये। आहाहा! लड़का आया दो वर्ष का—चार वर्ष का। बापू! ऐसा। बापू! ऐसा। परन्तु वह बड़ा मिलने आया, उसके सामने तो देखता नहीं और इसके साथ रुक गया। आहाहा! इसी प्रकार परमात्मा पूर्णानन्द का नाथ, जिससे मिलनेयोग्य है, वहाँ मिलता नहीं और मिलनेयोग्य नहीं, वहाँ रुक गया, इसको यह और यह और यह... यह तेरी भूल है, प्रभु! आहाहा! यह भूल किसी ने करायी है, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : यह भूल छोटी है या बड़ी?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बड़ी भूल है, निगोद में जाने की। और वह परमात्मा में जाने की (बात है)।

जिसके जानने से कर्म-कलंक दूर हो जाते हैं, वह आत्मा शरीर में निवास करता हुआ भी... आहाहा! भगवान अपना अस्तित्व शरीर में रखता होने पर भी, शरीर से भिन्न अस्तित्व रहता है। समझ में आया? **शरीर में निवास करता हुआ भी...** क्षेत्र में मानो शरीर में रहा हो, ऐसा कहने पर भी, **देहरूप नहीं होता,...** शरीररूप हुआ नहीं। वह तो अपने आनन्दस्वरूप से प्रभु रहा है। आहाहा! **शरीर में निवास करता हुआ भी देहरूप नहीं होता,...** आहाहा! **उसको तू अच्छी तरह पहचान...** आहाहा! ऊपर कहा था, वह निर्विकल्प था। आहाहा! भूतार्थ भगवान परमात्मा है, उसे तू देख। आहाहा! बाकी बाहर को देख-देखकर तो अनन्त समय तूने गँवाया है, प्रभु! आहाहा! जो चीज़ तुझमें नहीं, उसे देखने को समय, प्रभु! तूने गँवाया है। जो चीज़ तुझमें है, उसे देखने का तूने समय नहीं लिया। आहाहा! वीतरागमार्ग ऐसा है, बापू! आहाहा! वस्तु ऐसी है। ओहोहो!

उसको तू अच्छी तरह पहचान और दूसरे अनेक प्रपंचों (झगड़ों) को तो

जानता है,... देखो भाषा! आहाहा! पर को, शरीर को, देश को, परिवार को, इसे और उसे... आहाहा! यह सब प्रपंच पर हैं, उन्हें जानने में रुकता है। आहाहा! **अपने स्वरूप की तरफ क्यों नहीं देखता ?** समझ में आया ? आहाहा! अकेला परप्रकाश में रुक गया है, ऐसा कहते हैं। स्वप्रकाश रह गया पूरा। समझ में आया ? वीतरागमार्ग, बापू! अनन्त पुरुषार्थ अपेक्षित है। यह कहीं साधारण बात नहीं है। आहाहा! जिसकी दिशा पलटा डालनी है, ऐसा कहते हैं। जो ज्ञान, उस पर के प्रपंच के झगड़े को जानने में रुका है... आहाहा! प्रभु! उस ज्ञान को अन्तर में झुका। वहाँ भगवान विराजता है। आहाहा! कहो, सुजानमलजी! ऐसी बात है।

दूसरे प्रकार से कहा कि ज्ञान की पर्याय पर को जानने में रुकी परप्रकाश में, परन्तु स्वप्रकाश रह गया अन्दर। आहाहा! जिसे जानने में स्वप्रकाश प्रगट होता है। और उस स्वप्रकाश में फिर पर का जानना होता है, वह तो स्वपरप्रकाशक अपना स्वभाव है। आहाहा! यह पंचाध्यायी में नहीं कहा ? हे महाप्रज्ञ! जानने का तो स्वभाव है, इसलिए पर को जानना, वह कहीं नुकसानकारक नहीं है।

मुमुक्षु : .... स्व और पर को....

पूज्य गुरुदेवश्री : जानता है। यह है पंचाध्यायी में। यह चर्चा पहले बहुत चली थी। (संवत्) १९९० के वर्ष। वहाँ वीरजीभाई के साथ बात चलती थी, राजकोट। ज्ञान है, वह तो प्रज्ञाब्रह्म भगवान जाने। सब जानना, वह कहीं नुकसान का कारण नहीं है। परन्तु उस जानने में स्वप्रकाश कब पर को जाने ? यह उसका स्वपरप्रकाशक तब सिद्ध होता है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : .... पर को जानकर पर को छोड़ने का...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो स्व को जानने के बाद पर को जानने का तो उसका स्वरूप ही है। केवलज्ञानी सबको जानते हैं या नहीं ? परन्तु वह तो स्व को जानते हुए उनका स्वभाव स्व—पर प्रकाशित करना कार्य है, इसलिए वे प्रकाशित करते हैं। परन्तु अकेले पर को प्रकाशित करने जाने से परप्रकाशक भाव, वह उसका स्वभाव नहीं अकेला। आहाहा! समझ में आया ? केशवलालजी! ऐसा है। आहाहा!

जो त्रिकाली परमात्मस्वरूप है और वह देह से भिन्न वहाँ रहा हुआ तत्त्व है अन्दर। वह कहीं बाहर देखने जाये, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा जो भगवान, उसे तू क्यों जानता नहीं, भाई! आहाहा! है? **उसको तू अच्छी तरह पहचान...** आहाहा! भगवान ज्ञानमूर्ति प्रभु पूर्ण आनन्द को भली रीति से अर्थात् स्वसन्मुख होकर निर्विकल्प शान्ति द्वारा उसे जान। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

और दूसरे अनेक प्रपंचों (झगड़ों) को तो जानता है;... आहाहा! अरे! शास्त्र का जानपना और अकेले पर का (जानपना), झगड़ा है, कहते हैं। आहाहा! इसका उसे अभिमान हो जाये फिर तो। आहाहा! हमको आता है और हम यह। अरे! प्रभु! भाई! यह तेरे मार्ग... बापू! स्व-परमात्मा को जानते हुए उस ओर— **स्वरूप की तरफ क्यों नहीं देखता? वह निज स्वरूप ही उपादेय है,...** वास्तव में तो जाननेयोग्य एक ही चीज़ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? परमात्मप्रकाश, योगीन्द्रदेव। आहाहा!

दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम हुए, उसकी तो बात एक ओर रख दी। परन्तु यह तो पर को जानने में रुकना, वह प्रतिबन्ध है, रुक गया है, ऐसा कहते हैं। क्या कहा? कि यह दया, दान, व्रत, भक्ति से जीव को लाभ होगा, यह बात तो कहीं रह गयी। यह तो राग है। आहाहा! प्रभु! आत्मा में राग नहीं। उसे जानने के लिये तो रागरहित की परिणति काम करती है। यह २८वीं गाथा में कहेंगे। परन्तु यहाँ तो ज्ञान की पर्याय जिसकी है, इसे जाने बिना वह पर्याय पर को जानने में अकेली रुकी हुई है, प्रभु! आहाहा! और झगड़ा खड़ा हुआ वहाँ। ग्यारह अंग जाने, नौ पूर्व जाने। आहाहा!

मुमुक्षु : अर्थात् स्वयं रह गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं रह गया जाननेयोग्य था। आहाहा! कहो, देवजीभाई!

वह निज स्वरूप ही उपादेय है, अन्य कोई नहीं है। देखो! आहाहा!

तात्पर्य रखते हैं न? तात्पर्य है न अन्तिम! भावार्थ रखते हैं न! शब्दार्थ, आगमार्थ, नयार्थ, मतार्थ, भावार्थ—पाँच बोल है न? प्रत्येक में पाँच है। उसमें भावार्थ रख देते हैं। आहाहा! २७ (गाथा) हुई।

गाथा - २८

अथ ऊर्ध्वं प्रक्षेपपञ्चकं कथयन्ति। तद्यथा –

२८) जित्थु ण इंदिय-सुह-दुहइँ जित्थु ण मण-वावारु।
सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ अण्णु परिं अवहारु।।२८।।

यत्र नेन्द्रियसुखदुःखानि यत्र न मनोव्यापारः।
तं आत्मानं मन्यस्व जीव त्वं अन्यत्परमपहर।।२८।।

जित्थु ण इंदियसुहदुहइं जित्थु ण मणवावारु यत्र शुद्धात्मस्वरूपे न सन्ति न विद्यन्ते। कानि। अनाकुलत्वलक्षणपारमार्थिकसौख्यविपरीतान्याकुलत्वोत्पादकानीन्द्रियसुखदुःखानि यत्र च निर्विकल्पपरमात्मनो विलक्षणः संकल्पविकल्परूपो मनोव्यापारो नास्ति। सो अप्पा मुणि जीव तुहुं अण्णु परिं अवहारु तं पूर्वोक्तलक्षणं स्वशुद्धात्मानं मन्यस्व नित्यानन्दैकरूपं वीतराग-निर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा जानीहि हे जीव, त्वम् अन्यत्परमात्मस्वभावाद्विपरीतं पञ्चेन्द्रियविषय-स्वरूपादिविभावसमूहं परस्मिन् दूरे सर्वप्रकारेणापहर त्यजेति तात्पर्यार्थः। निर्विकल्पसमाधौ सर्वत्र वीतरागविशेषणं किमर्थं कृततं इति पूर्वपक्षः। परिहारमाह। यत एव हेतोः वीतरागस्तत एव निर्विकल्प इति हेतुहेतुमद्भावज्ञापनार्थम्, अथवा ये सरागिणोऽपि सन्तो वयं निर्विकल्प-समाधिस्था इति वदन्ति तन्निषेधार्थम्, अथवा श्वेतशङ्ख वत्स्वरूपविशेषणमिदम् इति परिहारत्रयं निर्दोषिपरमात्मशब्दादिपूर्वपक्षेऽपि योजनीयम् ।।२८।।

इससे आगे पाँच प्रक्षेपकों द्वारा आत्मा ही का कथन करते हैं –

ना जहाँ इन्द्रिय सौख्य दुख ना जहाँ मन व्यापार ना।
हे जीव! मानो उसे आतम अन्य सब पर छोड़ना।।२८।।

अन्वयार्थ :– [यत्र] जिस शुद्ध आत्मस्वभाव में [इन्द्रियसुखदुःखानि] आकुलता रहित अतीन्द्रियसुख से विपरीत जो आकुलता के उत्पन्न करनेवाले इन्द्रियजनित सुख-दुःख [न] नहीं हैं, [यत्र] जिसमें [मनोव्यापारः] संकल्प-विकल्परूप मन का व्यापार भी [न] नहीं है, अर्थात् विकल्प रहित परमात्मा से व्यापार जुदे हैं, [तं] उस पूर्वोक्त लक्षणावाले को [हे जीव त्वं] हे जीव, तू [आत्मानं] आत्माराम [मन्यस्व] मान, [अन्यत्परम्] अन्य सब विभावों को [अपहर] छोड़।

भावार्थ :– ज्ञानानन्दस्वरूप निज शुद्धात्मा को निर्विकल्पसमाधि में स्थिर होकर जान, अन्य परमात्मस्वभाव से विपरीत पाँच इन्द्रियों के विषय आदि सब विकार परिणामों को दूर से ही त्याग, उनका सर्वथा ही त्याग कर। यहाँ पर किसी शिष्य ने प्रश्न किया कि निर्विकल्पसमाधि में सब जगह वीतराग विशेषण क्यों कहा है? उसका उत्तर कहते हैं – जहाँ पर वीतरागता है, वहीं निर्विकल्पसमाधिपना है, इस रहस्य को समझाने के लिये अथवा जो रागी हुए कहते हैं कि हम निर्विकल्पसमाधि में स्थित हैं, उनके निषेध के लिये वीतरागता सहित निर्विकल्पसमाधि का कथन किया गया है, अथवा सफेद शंख की तरह स्वरूप प्रगट करने के लिये कहा गया है, अर्थात् जो शंख होगा वह श्वेत ही होगा, उसी प्रकार जो निर्विकल्पसमाधि होगी, वह वीतरागतारूप ही होगी।।२८।।

गाथा - २८ पर प्रवचन

२८। **आगे पाँच प्रक्षेपकों द्वारा आत्मा ही का कथन करते हैं**—प्रक्षेप गाथा है पाँच, ऐसा कहते हैं।

२८) जित्थु ण इंदिय–सुह–दुहइँ जित्थु ण मण–वावारु।
सो अप्पा मुणि जीव तुहुँ अण्णु परिं अवहारु।।२८।।

अन्वयार्थ :— आहाहा! **जिस शुद्ध आत्मस्वभाव में...** भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानस्वभावमय ज्ञायकस्वभाव में **आकुलता रहित अतीन्द्रियसुख से विपरीत जो आकुलता के उत्पन्न करनेवाले इन्द्रियजनित सुख-दुःख नहीं है,...** आहाहा! इन्द्रियजनित सुख-दुःख भगवान आत्मा में नहीं है। बाहर की मिठास में जो दिखते हैं न! प्रेम और राग और यह सब सुख-दुःख का भाव भगवान में नहीं है। आहाहा! अतीन्द्रिय सुख से विपरीत ऐसे इन्द्रिय सुख की कल्पना, वह वस्तु में नहीं है। आहाहा! इससे पहले ऐसा लिया, देखो न! '**इन्द्रियसुखदुःखानि**' कहना है, वहाँ ऐसा लिया। **आकुलता रहित अतीन्द्रिय सुख से विपरीत...** आहाहा! **आकुलता के उत्पन्न करनेवाले इन्द्रियजनित सुख-दुःख...** इन्द्रियजनित सुख तो आकुलता का उत्पन्न करनेवाला है। समझ में आया?

पाँच इन्द्रिय के ओर के प्रेम से उत्पन्न हुआ भाव, वह सब आकुलता उत्पन्न

करनेवाला है। भगवान आनन्दस्वरूप के प्रेम से उत्पन्न हुआ भाव, अतीन्द्रिय आनन्द को प्राप्त कराता है। आहाहा! इसलिए महँगा पड़े लोगों को...यह **अतीन्द्रिय सुख से विपरीत जो आकुलता के उत्पन्न करनेवाले...** आहाहा! विषयों के लक्ष्य में जाती विकल्पदशा, वह सब दुःखरूप आकुलता उत्पन्न करती है। आहाहा!

जिसमें सुख-दुःख नहीं है,... आत्मा में यह वस्तु है नहीं। आहाहा! पर के लक्ष्य से उत्पन्न हुई इन्द्रिय विषय के सुख-दुःख की कल्पना, भगवान आत्मा में उसका अभाव है। ऐसे आत्मा को तू देख। आहाहा! ऐसे आत्मा को तू देखने जा अन्दर। आहाहा! भगवान विराजता है न प्रभु, कहते हैं। आहाहा! 'नजर के आलस्य से रे मैंने नैन से न निरखे हरि।' 'नैन के अलास्य से (न) निरखे...' भगवान विराजता है, उसे तूने देखा नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह मुर्दा, हड्डियाँ, चमड़ी, माँस को देखने में प्रेम से रुका है। वह प्रेम, वह सुख-दुःख की कल्पना और आकुलता है। आहाहा! समझ में आया?

जिसमें... 'मनोव्यापारः' आहाहा! **संकल्प-विकल्परूप मन का व्यापार भी नहीं है,...** आहाहा! संकल्प-विकल्प की व्याख्या अपने आ गयी है। वह जिसमें नहीं। पूर्णानन्द प्रभु अनाकुल आनन्द का नाथ सदानन्द प्रभु, उसमें मन के संकल्प-विकल्प का अभाव है। **विकल्प रहित परमात्मा से व्यापार जुदे हैं,...** स्पष्टीकरण किया। ऐसा पहले कहा था न? **आकुलता रहित अतीन्द्रिय सुख से विपरीत...** इन्द्रिय के सुख-दुःख। ऐसे विकल्परहित भगवान आत्मा में मन का व्यापार पृथक् है। आहाहा!

उस पूर्वोक्त लक्षणवाले को हे जीव! तू आत्माराम मान,... आहाहा! मन के संकल्प-विकल्प से भिन्न प्रभु, उसे तू आत्माराम जान। आहाहा! निश्चय की बातें लोगों को ऐसी लगे न! वस्तु ही यह है, भाई! **आत्माराम मान,...** आहाहा! **अन्य सब विभावों को छोड़।** सब विकल्पों की जाति... आहाहा! उसे छोड़।

भावार्थ :- ज्ञानानन्दस्वरूप निज शुद्धात्मा को... पहली व्याख्या की है कि आत्मा कैसा है। **ज्ञानानन्दस्वरूप निज शुद्धात्मा...** वह तो ज्ञान और आनन्दस्वरूपी भगवान है। ज्ञान और आनन्द जिसका स्वभाव त्रिकाल है, वह आत्मा। आहाहा!

निर्विकल्प समाधि में स्थिर होकर जान,... आहाहा! कषाय के विकल्प से रहित अकषाय की समाधि, अकषाय की शान्ति। आहाहा! समाधि अर्थात् शान्ति। अकषाय की शान्ति द्वारा सदानन्द भगवान को जान। आहाहा! समझ में आया? यह संकल्प-विकल्प से भिन्न प्रभु है। इसलिए उसे जानने में संकल्प-विकल्प के कषाय से रहित और निर्विकल्प-कषाय रहित, ऐसी शान्ति... आहाहा! रागरहित और शान्तिसहित ऐसी समाधि अर्थात् शान्ति अर्थात् दशा, उसके द्वारा उसे जान। आहाहा! ऐसा कठिन लगे। व्यवहार से होता है... व्यवहार से होता है... ऐसे लोगों को (यह) कठिन लगे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन इकट्ठा करे, भाई! कठिन बात रखी है भाई ने। उपादानवादी घोर निमित्तपरक घोर निमित्त का आश्रय हमेशा लेते हैं। अरे! प्रभु! भाई!

यह तो मुझे समझाते हो तो तुम वाणी का—निमित्त का आश्रय लिया या नहीं? अरे! प्रभु! ऐसा न बोल। आहाहा! सत्य सिद्धान्त क्या है? सत्य को सत्यरूप से रख। बोलने की क्रिया बोलने से होती है। उसमें आत्मा कहाँ उसे करता है? आहाहा! यहाँ तो संकल्प-विकल्प का कर्ता भी आत्मा नहीं, उससे ज्ञात हो, ऐसा नहीं। आहाहा! परमानन्द का नाथ सदानन्द प्रभु, आहाहा! ऐसा आया है न? देखो!

ज्ञानानन्दस्वरूप निज शुद्धात्मा... वापस अपना भगवान। पर परमेश्वर और वीतराग की यहाँ बात नहीं है। परद्रव्य के प्रति लक्ष्य जायेगा तो इसे राग होगा। आहाहा! **ज्ञानानन्दस्वरूप निज शुद्धात्मा...** इसीलिए इससे बात की। समझ में आया? आहाहा! है, देखो! '**नित्यानन्दैकरूपं वीतरागनिर्विकल्पसमाधौ स्थित्वा जानीहि**' नित्यानन्द लिया है। आहाहा! परसन्मुख के विकल्प से छूट और स्वसन्मुख की निर्विकल्प परिणति द्वारा भगवान को देख। आहाहा! माल तो रखा है न! वस्तु तो यह है।

ज्ञानानन्दस्वरूप निज शुद्धात्मा को निर्विकल्पसमाधि में स्थिर होकर जान,... ऐसा कहकर यह कहते हैं कि, व्यवहार के विकल्पों से वह ज्ञात हो, ऐसा नहीं है। निर्विकल्प समाधि की शान्ति से ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? वह तो वीतराग परिणति से वीतरागस्वरूप सदानन्द ज्ञात हो, ऐसा है। व्यवहार से ज्ञात हो, ऐसा

नहीं। यह लोग कहे, व्यवहार परम्परा मुक्ति का कारण। अरे! प्रभु! क्या है? आहाहा! वास्तव में तो राग है, वह तो परम्परा दुःख का कारण है। परन्तु जिसे आत्मा के आनन्द का भान हुआ है, उसे जो यह शुभराग आया, उसमें अशुभराग घटता है और फिर उसे टालेगा, इससे परम्परा उसे आरोप दिया गया है। समझ में आया?

बाकी तो पण्डित बहुत आगे-पीछे करके उनकी बात को स्थापित करते हैं। परन्तु वस्तु तो यह है। (वे) ऐसा कहते हैं, तुमने यह सब ऐसे मकान (मन्दिर) बनाये। रामजीभाई ने यह सब कुछ किया। कितनी पुस्तकें बनाते हो तुम। तुम निमित्त द्वारा तो उपादान... अरे! प्रभु! कौन बनावे? भाई! ऐसा कि तुम निमित्त द्वारा उपादानवादी घोर निमित्त का आश्रय लेते हैं। प्रभु! शान्त हो, भाई! और निमित्तों द्वारा तथा सवेरे, दोपहर, रात्रि (चर्चा) द्वारा उपादान को कहते हैं, उपादान से होता है। राग द्वारा, करे निमित्त द्वारा। ऐई! भगवान! ऐसा नहीं होता, बापू! आहाहा! माँ की मजाक नहीं होती। समझ में आया? ऐसे सत् की स्थिति जहाँ खड़ी होती हो, वहाँ निमित्ता हो, परन्तु उसके द्वारा सत् को सिद्ध करते हैं, ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

अन्य परमात्मस्वभाव से विपरीत पाँच इन्द्रियों के विषय आदि सब विकार परिणामों को दूर से ही त्याग,... आहाहा! भगवान और भगवान की वाणी भी इन्द्रिय का विषय है। आहाहा! उसे छोड़, कहते हैं। भगवान स्वयं ऐसा कहते हैं। भगवान ऐसा स्वयं कहते हैं, हमारी ओर का लक्ष्य तू छोड़। और तू भगवान अन्दर है, वहाँ जा न! आहाहा! भाई! तुझे भरोसा नहीं बैठता। एक समय की पर्याय की व्यक्तता में रुका हुआ, उस एक समय की पर्याय के पीछे पूरा आत्मदल है। वह पूरा परमात्मा है। परन्तु एक समय की पर्याय में ही उसकी लीनता लगी है अनादि से। इसलिए ऐसी पूरी वस्तु है, उसकी नजर नहीं की। आहाहा!

जैन साधु हुआ। दिगम्बर हुआ। अन्तिम नौवें ग्रैवेयक जाये, वह तो दिगम्बर मुनि जाये। ऐसी जिसकी शुभक्रिया और शुभ विकल्प शुक्ललेश्या। परन्तु वह कहीं आत्मा नहीं। ऐसे शुक्ललेश्या से भी जो आत्मा मिला नहीं। व्यवहार तो बहुत (पालन किया)। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो' परन्तु उस विकल्प से प्राप्त हो,

ऐसी वह चीज़ नहीं है। वह तो निर्विकल्प वीतराग परिणति से प्राप्त हो, ऐसा वीतरागभाव है। उसे लक्ष्य में लिया नहीं और यह क्रियाकाण्ड में रुककर रचपच गया। आहाहा!

परमात्मस्वभाव से विपरीत पाँच इन्द्रियों के विषय आदि सब विकार परिणामों को दूर से ही त्याग,... आहाहा! अर्थात् कि वह होने ही न दे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! **उनका सर्वथा ही त्याग कर।** है? है न पाठ? '**सर्वप्रकारेणापहर**' है न? अपरि सर्व प्रकार से अपहर तज। आहाहा! **सर्वथा ही त्याग कर।** वीतराग का मार्ग स्याद्वाद कथंचित् है। संकल्प-विकल्प कथंचित् छोड़ना और कथंचित् आदरना, ऐसा होगा? यह स्याद्वाद होगा? यह लोग ऐसा कहते हैं। निमित्त से भी होता है और उपादान से भी होता है, उसे स्याद्वाद कहते हैं। अरे! भगवान! आहाहा!

यहाँ पर किसी शिष्य ने प्रश्न किया कि निर्विकल्पसमाधि में सब जगह वीतराग विशेषण क्यों कहा है? जहाँ तहाँ वीतराग समाधि, वीतराग परिणति—ऐसा वीतराग शब्द क्यों लगाते हो? लोगों को ऐसा है न? कि ऐसी वीतरागपने की आठवें से ही प्राप्ति होती है। यह लोग। परन्तु यहाँ तो पहले से ही वीतराग समाधि परिणति सम्यग्दर्शन की (हो), वह वीतराग परिणति है। आहाहा! सम्यग्दर्शन, वह अरागी परिणति है। स्वसंवेदनज्ञान, वह अरागी ज्ञान है और उतना शान्ति—स्थिरता, वह अकषाय परिणति है। चौथे गुणस्थान में, हों! आहाहा! निर्विकल्प समाधि से जान, ऐसा कहा। वापस कहे, वीतराग क्यों कहा? तो यह निर्विकल्प समाधि से जान, यह चौथे में दूसरे प्रकार से ज्ञात होगा? और आठवें में निर्विकल्प समाधि से ज्ञात हो, ऐसा होगा? समझ में आया?

उसका उत्तर कहते हैं—जहाँ पर वीतरागता है, वहीं निर्विकल्पसमाधिपना है,... भाषा देखो! आहाहा! रागरहित शान्ति, वहाँ वीतरागता है और वीतरागता है, वहाँ रागरहित शान्ति है। आहाहा! भूतार्थ सत्यार्थ प्रभु परमात्मा के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन होता है, वह वीतराग परिणति है। समझ में आया? चौथे गुणस्थान से वीतराग परिणति है, भाई! आहाहा! **सब जगह वीतराग विशेषण क्यों कहा है? (उसका उत्तर कहते हैं—) जहाँ पर वीतरागता है, वहीं निर्विकल्पसमाधिपना है,...** जहाँ वीतरागता हो, वहाँ रागरहित शान्ति होती है।

इस रहस्य को समझाने के लिये अथवा जो रागी हुए कहते हैं कि हम निर्विकल्प-समाधि में स्थित हैं,... देखा ? आहाहा ! है राग और कहे, हमारे निर्विकल्प समाधि है। आहाहा ! वेदान्ती है न यह ? हमको अनुभव होता है। अनुभव होता है। धूल भी अनुभव नहीं। राग का अनुभव है। राग की बहुत मन्दता हो न, इसलिए उसे लगता है कि मुझे आत्मा का अनुभव हुआ।

मुमुक्षु : वीतरागता नहीं तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही है। विकल्परहित कहो या रागरहित कहो या वीतरागसहित कहो। है तो एक ही। देखा !

रागी हुए कहते हैं कि हम निर्विकल्पसमाधि में स्थित हैं, उनके निषेध के लिये वीतरागतासहित निर्विकल्पसमाधि का कथन किया गया है,... दो बातें हुई। एक तो निर्विकल्प समाधि है, वह वीतरागसहित ही होती है। वीतरागपना हो, वहाँ निर्विकल्प समाधि होती है। एक बात। और रागी भी राग में रुककर ऐसा कहे कि हमको निर्विकल्प समाधि है, उसका निषेध करने के लिये यह निर्विकल्प वीतरागता कही है। आहाहा ! और ऐसी परिणति तो जिसे भगवान ने सर्वज्ञ ने जैसा और जितना आत्मा कहा है, उतना और वैसा आत्मा दृष्टि में आवे, तब उसे वीतरागता प्रगट होती है। अज्ञानियों ने कहे हुए आत्मा में वीतरागी परिणति खड़ी ही नहीं होती। समझ में आया ? अब ऐसा उपदेश। उसमें क्या करना कुछ ? इच्छामि पडिकमणुं करना, तत्सूत्री करना। भगवान के निकट खड़े रहकर कायोत्सर्ग करना, दर्शन करना।

यहाँ तो कायोत्सर्ग अर्थात् विकल्प से भी छूटकर स्थिर होना, इसका नाम कायोत्सर्ग है। आहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बात करना और फिर वापस मन्दिर और लाखों पुस्तकें (प्रकाशित करना)। बीस लाख पुस्तकें प्रकाशित की। चौदह लाख यहाँ से और छह लाख वहाँ जयपुर से। प्रचार तो निमित्त द्वारा करते हो और फिर कहे निमित्त से होता नहीं। ऐई ! भगवान ! ऐसा अर्थ नहीं होता, भाई ! यह तो उसके कारण से, होने के काल में पुस्तकें होती हैं। मकान (मन्दिर) के काल में मकान होता है। वह किसने करना चाहा था ? ऐसा करना था ? मुम्बईवालों को नहीं करना था। तीन लाख का

बनाना था, ऐसा उन लोगों को, ऐसा सुना था। फिर बाद में सुना, तीन लाख का। पाँच का न? उसमें पाँच लाख या करोड़ों... होने के काल में होता है, उसे करे कौन? भाई! आहाहा! और वापस यहाँ होने के काल में दो वर्ष हो गये। भाव बढ़ गया। दाडिया का, कारीगर का, माल का। इसलिए जहाँ होने का काल (हो)... बापू! तीन के पाँच, पाँच के दस, दस के छब्बीस हो गये। कौन करे? भाई! आत्मा एक रजकण भी बदले, यह आत्मा की सामर्थ्य नहीं है। करना और कहे, कर सकता नहीं। भाई! करना नहीं, बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! जहाँ होता है, उसे जानना। बस। आत्मा करता है, यह वस्तु में नहीं है, भाई! आहाहा! तो ऐसे मन्दिरों द्वारा आत्मा ज्ञात हो, ऐसा होगा? तो फिर किये किसलिए तुमने यह सब? रामजीभाई बहुत ध्यान रखते थे।

मुमुक्षु : किसने किये? पुद्गल का कार्य जीव करे? पर का काम तो पर करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! बोलना कुछ, करना कुछ। कथनी और करनी में अन्तर है, (ऐसा लोग) कहते हैं। वे कहें, वह अपने को बराबर जानना तो चाहिए न?

मुमुक्षु : .... अधिक स्पष्टीकरण हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! पहले जैसे-जैसे विरोध होता गया है, वैसे-वैसे स्पष्टीकरण होता गया है। मार्ग तो ऐसा है, भाई!

यहाँ तो कहते हैं, वीतराग तू। अर्थात् कि जिसमें शान्ति और समाधि से आत्मा ज्ञात हो, वह समाधि वीतरागवाली ही होती है। उसमें लोग समाधि जो करते हैं न बाबा और वे? वह नहीं। उसका निषेध करने के लिये यह बात है। अन्यमतिवाले समाधि (लगावे)। क्या धूल समाधि? सुन न! रागरहित अकषाय परिणति (हो), उसे वीतरागी परिणति और उसे समाधि कहते हैं। उसके द्वारा भगवान ज्ञात हो, ऐसा है। आहाहा! उसे दूसरे प्रकार से... कहा न? रागी हो और वीतरागी परिणति मानता हो, उसे बतलाने के लिये बात है। आहाहा! आत्मा एक सर्वव्यापक है, ऐसा अनुभव हमको होता है। यह वस्तु खोटी है, ऐसा कहते हैं। उसे राग का अनुभव है वहाँ और मानता है कि हम आत्मा का साक्षात्कार करते हैं। उसे समझाने के लिये वीतरागता ली है। आहाहा! समझ में आया?

अथवा सफेद शंख की तरह स्वरूप प्रगट करने के लिये कहा गया है, अर्थात् जो शंख होगा, वह श्वेत ही होगा,... शंख-शंख। सफेद शंख। आहाहा! **उसी प्रकार जो निर्विकल्पसमाधि होगी, वह वीतरागतारूप ही होगी।** मन के और इन्द्रियों के विकल्पों से पार भगवान के सन्मुख होने में तो निर्विकल्प परिणति ही होती है। वीतराग परिणति ही होती है। शंख हो, वह सफेद ही होता है। उसी प्रकार आत्मा की पकड़ने की दशा, वह निर्विकल्प परिणति वीतरागी ही होती है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कहकर कोई ऐसा कहता है कि वीतरागभाव की निर्विकल्प समाधि तो आठवें में होती है। उसका भी यहाँ निषेध करते हैं। जब-जब भगवान परमात्मस्वरूप है, उसे समझने के लिये जब दृष्टि जाती है, तब वह दृष्टि निर्विकल्प और वीतरागी होती है। समझ में आया? आहाहा! बहुत अच्छा (आया)।

शंख होगा, वह श्वेत ही होगा, उसी प्रकार जो निर्विकल्प... आत्मा, आत्मा आनन्द का नाथ, प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द सदानन्द प्रभु आत्मा, उसे अनुभव करनेवाली दशा वीतरागी ही होती है। आहाहा! वहाँ विकल्प की गन्ध नहीं होती। आहाहा! यह बतलाने के लिये **वीतरागतारूप ही होगी।** ऐसा बतलाया है। २८ (गाथा) हुई। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)